E-ISSN-2584-2870 https://doi.org/10.65833/dbs.2026.339

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः
श्रीरघुनाथकीर्तिपरिसरः, देवप्रयागः
देवभूमि–सौरभम्
E-ISSN 2584-2870
Devabhūmisaurabham

Vol 3 Issue 1 Jan-June 2026 Devabhūmisaurabham International Journal of CSU Shri Raghunath Kirti Campus Devprayag Uttarakhand India

शाश्वतसुख और परमानन्द का मार्ग : नैतिकता

प्रभात कुमार
सहायकाचार्य
डी.ए.वी. महाविद्यालय, बुलन्दशहर
दूरभाष संख्या – 8859167278
ईमेल – prabhaprabhatam@gmail.com

शोधसार

परमात्मा ने सुख एवं आनन्द की प्राप्ति के लिए संसार का सृजन किया,किन्तु व्यवहारतः यह देखा जाता है कि भोगलिप्साग्रस्त मानव अपनी असंतुष्ट तृष्णाओं एवं इन्द्रियासक्त प्रवृत्तियों के कारण इस उद्देश्य से विचलित होकर दुःख, अशान्ति एवं द्वन्द्वों में उलझ जाता है। विषयभोगों की अनियंत्रित अभिलाषा मनुष्य को बाह्य साधनों में सुख की खोज के लिए प्रेरित करती है, जबकि भारतीय दार्शनिक परम्पराविशेषतः श्रुति एवं स्मृतियह प्रतिपादित करती है कि स्थायी एवं शाश्वत आनन्द का स्रोत बाह्य नहीं, अपितु अन्तःकरण की शुद्धता, एकाग्रता और धर्मानुकूल आचरणमें निहित है।

श्रुति-स्मृति परम्परा में प्रतिपादित नीतिशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य मानव को तमोगुणजन्य अज्ञान एवं रजोगुणजन्य आसक्ति से मुक्त कर सत्त्वगुण की ओर उन्मुख करना है, जिससे वह आत्मस्वरूप की अनुभूति करते हुए शाश्वत आनन्द को प्राप्त कर

सके। वेद, धर्मसूत्र, स्मृतियाँ एवं भारतीय नीतिसाहित्य सर्वसम्मति से यह प्रतिपादन करते हैं कि सुख का वास्तविक आधार बाह्य भोगसाधन नहीं है, अपितु मन, बुद्धि एवं चित्त से युक्त अन्तःकरण की शुद्धता, एकाग्रता एवं धर्मानुकूल आचरण है।अधर्म एवं अनैतिक आचरण से अर्जित वैभव एवं सुख क्षणिक और अस्थायी होते हैं। ऐसे साधनों से प्राप्त सुख के साथ भय, असुरक्षा, अशान्ति एवं मानसिक तनाव अनिवार्यतः जुड़े रहते हैं। परिणामस्वरूप मनुष्य का अन्तःकरण विक्षुब्ध हो जाता है, जो दीर्घकाल में मानसिक विकारों के साथ-साथ शारीरिक रोगों का भी कारण बनता है। इस प्रकार अनैतिकता न केवल आध्यात्मिक पतन का कारण है, बल्कि यह मनोदैहिकरोगों की उत्पत्ति में भी सहायक सिद्ध होती है।

वेदों के अनुसार सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म का विवेक मानव के अन्तःकरण में स्वाभाविक रूप से निहित है। यह आन्तरिक नैतिक चेतना ही मनुष्य को शुभ एवं अशुभ कर्मों के प्रति मार्गदर्शन प्रदान करती है। इसी विवेक के आधार पर मनुष्य पुण्य-पाप तथा उच्च-निम्न लोकों की प्राप्ति करता है। जब व्यक्ति इस नैसर्गिक नैतिक चेतना की अवहेलना करता है, तब वह प्रज्ञापराध की स्थिति में पहुँचकर आत्मविरोधी आचरण करता है, जिससे उसका समग्र व्यक्तित्व असंतुलित हो जाता है।

प्रस्तुत शोधपत्र में यह प्रतिपादित किया गया है कि वैदिक जीवनपद्धति (विशेषतः उपासना, यज्ञ एवं संयमित आचरण) के माध्यम से इन्द्रियों एवं अन्तःकरण को बहिर्मुखता से हटाकर अन्तर्मुखी बनाया जा सकता है। यह अन्तर्मुखता ही आत्मप्रकाश की प्राप्ति का साधन बनती है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति में नैतिकता का उद्भव बाह्य अनुशासन के रूप में नहीं, बल्कि स्वाभाविक प्रवृत्ति के रूप में होता है। आत्मप्रकाश की अवस्था में व्यक्ति के भीतर स्थित काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार स्वतः क्षीण हो जाते हैं और उसका आचरण धर्मानुकूल हो जाता है।'ईशावास्यमिदं सर्वम्'

की अनुभूति इस सत्य की ओर संकेत करती है कि समस्त जगत्में एक ही परमात्मा का व्यापक अस्तित्व है। इस अनुभूति के फलस्वरूप व्यक्ति में समत्व, करुणा एवं अहिंसा के भाव विकसित होते हैं। इसी प्रकार 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' का सिद्धान्त नैतिक आचरण का सार्वभौमिक मानदण्ड प्रस्तुत करता है, जो व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन दोनों में समान रूप से प्रासंगिक है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वैदिक नैतिकता का आधार अन्तःकरण की शुद्धि, आत्मप्रकाश की प्राप्ति एवं सार्वभौमिक दृष्टि का विकास है। यह न केवल व्यक्ति को स्थायी सुख एवं शान्ति की ओर उन्मुख करती है, अपितु सामाजिक समरसता एवं वैश्विक सौहार्द की स्थापना में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

कूटशब्द

वेद,वैदिक जीवनपद्धति, नैतिकता, सुख एवं परमानन्द, सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, प्रज्ञापराध, अन्तःकरण,शाश्वत नीति।

शोधलेख

परमात्मा ने सुख एवं आनन्द की प्राप्ति के लिए संसार का सृजन किया।मनुष्य का जन्म अपने पूर्व जन्म का प्रतिफल होता है। इसकी सफलता का मार्ग प्रशस्त करने के साधन को आचार या नैतिक चरित्र कहा जाता है । नैतिकता और आचार जीवन के सर्वाङ्गीण विकास की एक प्रक्रिया है ।लेकिन वर्तमान में नैतिक मूल्यों का दिन-प्रतिदिन ह्रास होता जा रहा है । आज समाज में गिरते मूल्य आने वाली पीढ़ी और समाज के लिये चिन्ता का विषय है। भौतिकता की चकाचौंध ने मनुष्य के जीवन को मूल्यहीन बना दिया है ।जन्म से मृत्युपर्यन्त अपनी भोगलिप्सा की पूर्ति के लिये भटकते-भटकते दुःख द्वन्द्व के गर्त में पड़कर छटपटाते हुए प्राणियों के मुख से यही आर्त्तनाद निकलता है-

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः, तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।[1]

अर्थात् भोग नहीं भोगे गये हम ही भोग लिए गये, समय व्यतीत नहीं हुआ अपितु हम ही बीत गए, तृष्णा समाप्त नहीं हुई हम ही जीर्ण हो गये।सुख-दुःख एवं सत्त्वादि त्रिगुणों से रचित संसार में सुख की झलक तो मिल सकती है किन्तु परमानन्द की प्राप्ति नहीं।इसीलिए सुख शान्तिमय जीवन यात्रा तथा परमानन्द प्राप्ति के लिए जगदीश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में वेदज्ञान की ज्योति प्रदान की, जिसके आलोक में जीवन श्रेय एवं प्रेयमार्ग पर सुचारूतया संचारित होता है। वेद प्रतिपादित जीवनपद्धति ही नैतिकता का परम आदर्श है। इन उच्चतम जीवनमूल्यों का वैदिक वाङ्मय एवं परवर्ती भारतीय साहित्य में मनीषियों एवं कवियों द्वारा अनेक आख्यानों-उपाख्यानों द्वारा चारु चित्रण किया गया है।मनु, याज्ञवल्क्यआदि स्मृतिकारों ने श्रुतिवाक्यों का अनुसरण कर पुनः हमें उनका स्मरण कराया। महामना विदुर, आचार्य चाणक्य, महाराज भर्तृहरि आदि मनीषियों ने अपने नीतिवचनों से सुख-समृद्धि के प्रशस्त मार्ग पर चलने के लिए पुनः प्रेरित किया, किन्तु अविवेकग्रस्त आधुनिक मानवजाति को श्रुतिस्मृति के नीतिवचन मूर्खतापूर्ण एवं उपहासास्पद प्रतीत होते हैं।सुख का मूल धर्म है, इसके स्थान पर सुख एवं समृद्धि का आधार अधर्म एवं अनीति प्रतीत होते हैं। धर्मविरुद्ध आचरण या अनैतिकता से भले ही कोई व्यक्ति सुख-संसाधनों की बहुलता स्थापित कर ले,किन्तु इससे उसे सुख-शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती है।भौतिकता की चकाचौंध में प्रमत्त अधिकांश लोग इसी पथ पर अग्रसर होकर येन-केन प्रकारेण अपनी स्वार्थसिद्धि में तत्पर हैं।विश्वमानवता की इस भ्रान्तधारणा को दूर करने के लिए महाप्रज्ञ आचार्य चाणक्य का यह वचन ही पर्याप्त है - **सुखस्य मूलं धर्मः**।[2] धर्म के व्यापक दृष्टिकोण के अनुसार समस्त नैतिक नियम इसके

---

[1] वैराग्यशतकम्-१२

[2]चाणक्यसूत्र-१

अन्तर्गत समाहित हो जाते हैं।वैशेषिक दर्शन के अनुसार वे आचरण, जिनके द्वारा मनुष्य की सांसारिक तथा आध्यात्मिक उन्नति सुनिश्चित होती है, 'धर्म' कहलाते हैं।[3]इस परिभाषा में धर्म को केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित न रखकर उसे जीवन के समग्र नैतिक एवं आचरणात्मक पक्ष से सम्बद्ध किया गया है।इसी विचारधारा का विस्तार करते हुए मनुस्मृति में धर्म के विविध आयामों का विशद निरूपण किया गया है। महाराज मनु के अनुसार धैर्य, क्षमा, इन्द्रियदमन, अस्तेय (चोरी न करना), शरीर, मन एवं बुद्धि की पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धिपूर्वक कर्माचरण, ज्ञान, सत्य तथा अक्रोध - ये सभी धर्म के अभिन्न अंग हैं।[4]इस धरती पर जीवन आधार सत्य ही है '**सत्येनोत्तभिता भूमि**'। एवं सत्य का पालन और आचरण करना धर्म ।इससे स्पष्ट होता है कि धर्म का स्वरूप बहुआयामी है, जिसमें नैतिकता, आत्मसंयम तथा शुद्ध आचरण का समन्वय निहित है।महर्षि व्यास ने धर्म अथवा नैतिकता के सार को अत्यन्त संक्षिप्त एवं सार्वभौमिक रूप में प्रतिपादित करते हुए कहा है कि **"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्**"अर्थात् जो आचरण अपने लिए प्रतिकूल प्रतीत हो, वह दूसरों के प्रति नहीं करना चाहिए।यह सिद्धान्त नैतिकता का सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक मानदण्ड प्रस्तुत करता है, जो समस्त मानवीय सम्बन्धों में समता, सहानुभूति एवं न्याय की स्थापना करता है।समस्त वैदिक तथा वेदपरवर्ती भारतीय वाङ्मय में नैतिकता के स्वरूप एवं उसकी अनिवार्यता का व्यापक प्रतिपादन प्राप्त होता है। यजुर्वेद में 'यज्ञ' को श्रेष्ठ कर्म तथा श्रेष्ठ धर्म के रूप में निरूपित किया गया है।[5]यहाँ यज्ञ का आशय केवल वैदिक अनुष्ठान तक सीमित न होकर व्यापक रूप में त्याग, परोपकार एवं समष्टि-कल्याण से है। इस दृष्टि से यज्ञ धर्म एवं

---

[3]यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। वैशेषिक दर्शन १/२

[4]धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ मनुस्मृति - ६/१२

[5]यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। यजुर्वेद ३१/१६

नैतिकता का प्रमुख आधार है, जो व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित प्रवृत्तियों से ऊपर उठाकर लोकमंगल की भावना से प्रेरित करता है।

नैतिक आचरण अथवा सदाचार को जीवन में सुख, समृद्धि, दीर्घायु, आरोग्य एवं विजय का मूल कारण माना गया है। इसके विपरीत अनैतिक या अधार्मिक आचरण मनुष्य को दुःख, क्लेश एवं विविध प्रकार की समस्याओं में डाल देता है। मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि दुराचारी व्यक्ति समाज में निन्दित होता है, दुःख का भागी बनता है, रोगग्रस्त रहता है तथा अल्पायु होता है।[6]इस प्रकार नैतिकता का अभाव न केवल सामाजिक प्रतिष्ठा को प्रभावित करता है, अपितु व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है।सत्य को नैतिकता का मूल एवं प्रथम आधारभूत तत्त्व स्वीकार किया गया है।भारतीय परम्परा में सत्य को 'साक्षात् ब्रह्म' के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, जो उसकी सर्वोच्चता को अभिव्यक्त करता है।अथर्ववेद में यह प्रतिपादित किया गया है कि सत्य के आधार पर न केवल मानव जीवन संचालित होता है, बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी का अस्तित्व भी उसी पर अवलम्बित है।[7]इसी का अनुगान करते हुए महर्षि व्यास ने लिखा है-

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यते परम्।
सत्येन विधृतं सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।।[8]

अर्थात् सत्य का वचन ही श्रेष्ठ है, सत्य से बढ़कर कोई अन्य तत्त्व नहीं है; सम्पूर्ण जगत सत्य के द्वारा ही धारित है और उसी में प्रतिष्ठित है।सत्य के पालन से ही जीवन में समस्त काम्य सुख, यहाँ तक कि स्वर्गादि उच्च अवस्थाओं की प्राप्तिसंभव मानी गई

---

[6]दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च। मनु०४/१५७

[7]सत्यं बृहद् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति॥ अथर्ववेद १२/१/१

[8]महाभारत शान्तिपर्व २५१/१०

है, जबकि असत्य मनुष्य को अधोगति की ओर ले जाता है।[9] अथर्ववेद में सत्याचरण को त्रिविध दुःखों से मुक्ति का साधन तथा शतायु जीवन का मूलकारण माना गया है।[10] महर्षि व्यास इन्हीं वेदवचनों को उपबृहिंत करके सत्य की महिमा का विस्तार से वर्णन करते हैं- सत्य ही स्वर्ग[11], विद्या, रूप, कुल, शील, बल एवं धन का साधन है। सत्य से व्यक्ति के धर्म, यश, धन आदि सब की वृद्धि होती है। सत्यभाषण एवं सत्याचरण के इन शास्त्रीय प्रमाणों पर हमें संशयरहित होकर विश्वास करना चाहिए। भारतीय परम्परा मेंश्रीराम, युधिष्ठिर, हरिश्चन्द्र जैसे महापुरुषों के जीवन-चरित्र इन आदर्शों के सशक्त प्रमाण हैं, जिन्होंने सत्य के पालन हेतु महान् कष्टों का भी वरण किया, किन्तु उससे विचलित नहीं हुए।आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह तथ्य पुष्ट हुआ है कि असत्य भाषण एवं अधार्मिक आचरण से मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसे आचरणों के परिणामस्वरूप रक्तचाप, हृदयगति आदि में असामान्य परिवर्तन होते हैं तथा शरीर में तनावजन्य रसायनों (stress hormones) का स्राव बढ़ जाता है, जो दीर्घकाल में विभिन्न रोगों का कारण बनते हैं।संक्षेपतः महर्षि चरक का एक वाक्य उक्त तथ्य को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त होगा-

धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टः कर्म यत् कुरुतेऽशुभम्।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोषप्रकोपनम्।।[12]

अर्थात् बुद्धि, धैर्य एवं कर्त्तव्यों के स्मरण से भ्रष्ट होकर मनुष्य जब अशुभ कर्म करता है, यह प्रज्ञापराध कहलाता है। प्रज्ञापराध का तात्पर्य है - मनुष्य अपनी बुद्धि

---

[9]सत्येन धार्यते लोकः स्वर्गं सत्येन गच्छति।
अनृतं तमसो रूपं तमसा नीयते ह्यधः॥ महा० शा०पर्व० १२/१८३/१

[10]अथर्ववेद १/१०/१

[11]सत्यं स्वर्गस्य सोपानम्। महाभारत

[12]चरक संहिता (शरीरस्थान १/१०२)

(प्रज्ञा), धैर्य (धृति) और स्मृति के मार्गदर्शन से विचलित होकर अशुभ या अनैतिक कर्म करता है, जो अंततः शारीरिक एवं मानसिक विकारों को जन्म देते हैं। ऐसी अवस्था में वह अपने कर्तव्यों, नैतिक मूल्यों और जीवन के यथार्थ ज्ञान को भूल जाता है। इस प्रकार प्रज्ञापराध समस्त दोषों (शारीरिक एवं मानसिक) के प्रकोपतथा तज्जन्य रोगों का मूल कारण माना गया है। जब बुद्धि भ्रमित होती है, धैर्य टूटता है और स्मृति विकृत हो जाती है, तब मनुष्य अपने हित-अहित का विवेक खो देता है और ऐसे कर्मों में प्रवृत्त होता है जो अंततः दुःख, रोग और असंतुलन को जन्म देते हैं।

अपरतःसुख या रसानुभूति का वास्तविक आधार हमारा अन्तःकरण, अर्थात् मन, बुद्धि और चित्तही है। जब यह अन्तःकरण किसी विषय के साथ तदाकार, तद्रूप (एकरूप) हो जाता है, तब उसमें तन्मयता उत्पन्न होती है और चित्तवृत्तियाँ शांत होकर सुख का अनुभव कराती हैं। जैसे किसी सुन्दर रूप का दर्शन, मधुर संगीत का श्रवण या स्वादिष्ट रस का आस्वादन - इन सब स्थितियों में हमारा मन और बुद्धि उस अनुभव में लीन होकर आनंद का सृजन करते हैं। यह सुख बाहरी वस्तुओं में नहीं, बल्कि हमारे अन्तःकरण की उस अवस्था में निहित होता है, जहाँ वह विषय के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता है।किन्तु जब मनुष्य आत्मा के स्वभाव, उसके गुण-धर्म और नैतिक सिद्धांतों के विपरीत आचरण करता है - अर्थात् अधर्म, पाप या अनैतिक कर्मों में प्रवृत्त होता है, तब उसका अन्तःकरण अशांत हो उठता है। ऐसी स्थिति में मन में स्वाभाविक रूप से भय, लज्जा, संकोच और ग्लानि के भाव उत्पन्न होते हैं। यह आंतरिक अशांति ही प्रज्ञापराध का परिणाम है, जो मन और शरीर दोनों को विकृत कर देती है।

इसी सत्य को वेद भी स्पष्ट करते हैं -

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।

अश्रद्धामनृते दधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः॥[13]

अर्थात् सृष्टिकर्ता परमात्मा ने सत्य और असत्य, धर्म और अधर्म का भेद मनुष्य के अन्तःकरण में स्वाभाविक रूप से स्थापित कर दिया है। उन्होंने असत्य, अधर्म और अनैतिक आचरण के प्रति मन में अश्रद्धा, भय और संकोच के भाव रखे हैं, जबकि सत्य, धर्म और नैतिकता के प्रति श्रद्धा, सम्मान और शांति के भाव प्रदान किये हैं। जब मनुष्य इन स्वाभाविक चेतनाओं के विपरीत आचरण करता है, तब उसका मन अशांत और व्यग्र हो जाता है। ऐसी अवस्था में उसे सुख की अनुभूति नहीं होती, बल्कि नकारात्मक भाव उसके मनोमय शरीर को संतप्त कर देते हैं और धीरे-धीरे यही स्थिति अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों का कारण बनती है।

यदि कोई व्यक्ति बार-बार अधर्ममय आचरण करते हुए अपने भीतर उठने वाली अश्रद्धा, भय और ग्लानि जैसी चेतावनियों को दबा देता है, तो वह आत्मघाती मार्ग पर अग्रसर हो जाता है। वेदों में ऐसे व्यक्तियों के लिए चेतावनी दी गई है कि वे अज्ञान और अंधकार से युक्त निम्न अवस्थाओं को प्राप्त होते हैं-

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।

ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥[14]

अतः स्पष्ट है कि हमारा अन्तःकरण ही हमारे धर्म-अधर्म, शुभ-अशुभ कर्मों का मूल निर्णायक है, और वही हमें सौभाग्य या दुर्भाग्य, पुण्यलोक या पापलोक की ओर ले जाता है। मनुष्य को यह स्वतंत्रता प्राप्त है कि वह किस मार्ग को चुने - उत्थान का या पतन का। इसलिए आवश्यक है कि हम अपने अन्तःकरण को निर्मल बनाए रखें और वेदों

---

[13]यजुर्वेद १९/७७

[14]यजुर्वेद ४०/०३

द्वारा निर्देशित नीतिमार्ग का अनुसरण करें, जिससे जीवन में वास्तविक सुख, शांति और कल्याण की प्राप्ति हो सके।

इसी सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि मनुष्य की विषयाभिमुख पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा राग-द्वेष से आवृत अन्तःकरण उसके जीवन में भटकाव के प्रमुख कारण हैं। जब ये इन्द्रियाँ बाह्य विषयों में अत्यधिक आसक्त हो जाती हैं, तब व्यक्ति अपने वास्तविक आत्मस्वरूप से दूर हो जाता है, जिससे विविध प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसके विपरीत, जब इन्द्रियाँ एवं अन्तःकरण अन्तर्मुखी होकर आत्मप्रकाश के समीप पहुँचते हैं, तब व्यक्ति में ज्ञान का उदय होता है और वह मिथ्या प्रपञ्च से निवृत्त होकर सन्मार्ग का अनुगमन करता है।

जीवन में सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है। वैदिक साहित्य में 'अग्नि' को ज्ञान एवं प्रकाश का प्रतीक माना गया है।इसीलिए वेदों में अनेकत्र अग्निरूप परमात्मा से सन्मार्ग में प्रेरित करने की प्रार्थना की गई है- **अग्ने नय सुपथा राये**[15]। गायत्री महामन्त्र में भी हम लोग सर्वप्रकाशक सवितारूप परमात्मा से बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करने की अभ्यर्थना करते हैं।वैदिक जीवन-पद्धति में उपासना एवं यज्ञ को अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार किया गया है, क्योंकि इनके माध्यम से साधक आन्तरिक शुद्धि एवं आत्मप्रकाश की अनुभूति करता है।जब व्यक्ति इस आत्मप्रकाश की अवस्था को प्राप्त करता है, तब उसके अन्तःकरण में स्थित समस्त आसुरी प्रवृत्तियाँ - जैसे काम, क्रोध, लोभ एवं हिंसास्वतः क्षीण हो जाती हैं।वहाँ प्रकाश ही प्रकाश है, ज्ञान का दिव्य आलोक परमज्योति है, जिसके प्रकाश में जीवन में कोई भी अनैतिक कार्य, कोई भी पापाचरण नहीं हो सकता है। इन दैवी-भावों के समक्ष हिंसा, लोभ, काम, क्रोध आदि आसुरीभावों का उन्मेष भी नहीं हो सकता। परमात्मा के सान्निध्य में व्यक्ति से कोई भी

---

[15]ऋग्वेद १/१८९/१

अशुभ कार्य कदापि सम्भव नहीं हो सकता। उस परम प्रकाश में परमात्मा ही विविधरूप में सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं, जिसे देखकर वैदिक ऋषि के हृदय से स्वतः गुञ्जायित होता है - **ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्**[16]।परमात्मा के उपासक को समस्त संसार एक समान ही प्रतीत होता है।सर्वत्र आत्मरूप का दर्शन करने वाला या अपने में सबको देखने वाला व्यक्ति किसी के साथ कोई अनैतिक आचरण कदापि नहीं कर सकता है। अतः शास्त्रकारों ने भी नैतिकता को, धर्म को ऐसे ही एकवाक्य में प्रतिपादित किया है- **आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्**[17]अर्थात् अपने को प्रतिकूल, लगने वाला कोई आचरण दूसरों के लिए न करें। यही धर्म या नैतिकता का सर्वस्व है।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1. ऋग्वेद, सम्पादक - स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली, 2023
2. यजुर्वेद, सम्पादक - स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली, 2023
3. अथर्ववेद, सम्पादक - स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली, 2023
4. महाभारत (संस्कृत मूल और हिंदी भाषान्तर सहित), पं. श्रीरामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1995
5. मनुस्मृतिः, शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी, 2021
6. वैशेषिकदर्शनम्, महर्षि कणाद, डॉ. श्रीधर त्रिपाठी, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1988
7. चरक संहिता, सम्पादक - ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2005
8. वैराग्यशतकम्, भर्तृहरिः, श्रीरामचन्द्र पाठक, भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस सिटी, 1992
9. चाणक्यसूत्राणि, चाणक्यः, भाषान्तरकार एवं व्याख्याकार – स्व. रामअवतार विद्याभास्कर, भारत मुद्रणालय, स्वाध्याय मंडल, पारडी, सूरत, 1946

[16]यजुर्वेद ४०/१

[17]महाभारत अनुशासनपर्व ११३/८